श्री

सज्जनचित्तवल्लभ

काव्य संस्कृत

मुनिमल्लिषेणाचार्य्य रचित

टीका वा भाषा छन्द सहित

जो

पण्डित मेहरचन्द दास जैनी सुनपत नगर निवासीने प्रथम पदच्छेद- संस्कृतटीका- अन्वय- भाषाटीका कर फिर प्रतिश्लोक अनुकूल भाषा छन्द बनाये

सो पुस्तक अमनसिंह जैनी सुनपत निवासीने पंडितजीकी आज्ञानुसार अति शुद्धतासे [illegible] यंत्रालय दिल्लीमें

मुद्रित कराई- सं० १९५९

इस पुस्तककी सरकारमें रजिष्टरी कराई गई

प्रथमबार छपी ५००

मूल्य जिल्दसहित ।)

निवेदन

सकलगुण अवास पण्डित मेहरचन्द दास जैनी सुनपत नगर निवासी टीका कार वा भाषा छन्द रचितने अपनी परम दयालुता से हक़ कापी राइट इस पुस्तक टीका वा भाषा छन्द सहित का मुझ अमनसिंह जैनी को दे दिया है और इस पुस्तक की सरकारी क़ानून के मूजिब सरकार में रजिस्टरी होगई है अब कोई साहब इसके छापने का परिश्रम न करें जिस पुस्तक पर मेरी मोहर नहोगी वह चोरीकीजानी जायगी

आप का कृपा पात्र
अमनसिंहजैनी

विज्ञापन

सज्जनचित्त वल्लभ काव्य संस्कृत मल्लिषेणा चार्य्यकृत जो धर्म्मनीति अर्थात मुनि उपदेश के विषय का ऐसी भली रीतिसे सम्पूरण कियाहै मानो समुद्रको लघु पात्रमें भरदियाहै जिस की पण्डित मेहरचंददास सुनपत नगर निवासी ने पदच्छेद- संस्कृतटीका- अन्वय- भाषाटीका- कर प्रतिश्लोक संस्कृत अनुकूल भाषा छंद बना कर इस पञ्चका अर्थ प्रकाशनी नामा टीका से ग्रन्थ अति शोभित कर दिया जिसकी सुन्दरता देखने पर ज्ञात होती है सो पुस्तक जिनपद सेवक असन सिंह जैनी सुनपत नगर निवासीने जिनमत उन्नति वा अल्पाभ्यासी जन लाभार्थ बड़ा परिश्रम। कर मुद्रित करायाहै मोल्य जिल्द सहित ॥) महसूलडाक इसके सिवायहै। निम्न स्थानोंसे मिल सक्तीहै

(दिल्ली कश्मीरी दरवाज़ा - असनसिंह जैनी जैनवीर

(सुनपत में - पण्डित मेहरचंद दास जैनी

विज्ञापन

भूधर जैन शतक भाषा

अति उत्तम ग्रन्थ है इसमें भांति २ के अर्थ हैं कहिं संसार अवस्था का कथन कहिं गुरु शिक्षा का वर्णन कहिं षट्कर्म की प्रशंसा कहिं सप्त विषन की निन्दा कहिं सम्यक ज्ञान चारित्र व्रतादिक की भलाई कहिं क्रोध मान माया लोभ हिंसादिक की बुराई कवि ने जिस प्रयोजन के अंग को लिखा है उस्का पूरा २ चित्राम खैंचकर दिखाया है जिस जैनशतक को मैंने बालबोध हेत शब्दार्थ वा सरलार्थ टीका से सुशोभित कर टाइप छापे में अति सुन्दर कागज़ पर शुद्धता से मुद्रित कराया है मोल्य जिल्द सहित । ॥=) महसूल डाक ज़िम्मे खरीदार है १० जिल्द के मोल्य में १ जिल्द मुफ़्त दई जायगी नीचे लिखे स्थानों से मिलैगी - देहली में - अमनसिंह अर्ज़ीनवीस कशमीरी दरवाज़ा । सुनपत में पण्डित मेहरचन्द दास जैनी - जिनधर्म पालक अमनसिंह

सज्जनचित्तवल्लभकाशुद्धाशुद्धपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	इमं	वुमं	२२	२५	पुनर्निवं	पुनर्निवं
२	१७	नाम्नाः	नाम्ना			गता	गता
८	२	जायेन	जायेन्	२२	२७	दुर्गन्धि	दुर्गन्धिं
१०	१	सता	सदा	२३	१८	व्याख्याति	व्याख्यातु
१०	४	सम्यंक्	सम्यक्	२६	८	ईयत्मेवन	ईपत्सेवन
१२	२	जानना	त्यागना	२७	१८	पाय	पापं
१२	२०	अनेनं	अनेन	३१	१३	स्त्रीभी	स्त्रीभी
१३	१	मन्यंसं	मन्यंसे	३४	४	मित्वा	विन्वा
१३	१	द्रव्योपा	द्रव्योपार्ज	३६	१६	वं	त्वं
		र्जनचित्ते	नचित्ते	३६	१६-२	स्मसमान	स्पर्श
१५	१४	पश्नः	पशुः	३६	२०	तान्येय	तान्येव
१७	१८	द्याप्य	द्याप्य	३६	२१	मित्वा	विन्वा
१८	२	शंय्या	शय्या	३६	२१	पार	परि
१८	१	स्थण्डिल	स्थण्डिल	३७	१४	अविरात	अविरत
		भूमिषु	भूमिषु	३७	२०	सर्वत	सर्वज्ञ
१८	१२	वरणीषु	धरणीषु	३७	२१	पर्स्से	धर्म्मं
१८	१४	यावन	यावत्	४०	८	लमसे	लभसे
१८	१६	गाष्ठा	गोष्ठी	४०	६	वपनं	वयनं
२०	११	शोणितशु क्रसम्भवम	शोणितशु क्रसम्भवम्	४१	२१	नाद्दत	चादत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	२	नैं	मैं	५८	१८	भवितुं	भवितु
४१	३		जोनहिं	६०	४	विश्वास	विश्वास
			डारतबी			ता	तां
			जमहीए	६०	५	त	ते
			रथानल	६०	५	पुमर्थ	पुमर्थे
			हैनछवी	६०	६	गुरूकव	गुरूकव
			भातिहीना			चन	चनं
४१	१७	मोह पाश	मोहपाशं	६०	६	शीर्षे	शीर्षे
४१	१८	आराधय	आराधयं	६०	७	चत	चेत
४४	१८	सित्वा	छित्वा	६०	११	विश्वास	विश्वास
४७	४	वलीवद:	वलीवर्द:			ता	तां
४९	६	साक्षया	साक्षया:	६०	२०	प्राप्नोषि	प्राप्नोषि
५४	१२	कल्ल	कुल	६१	६	कुवना	कुवल:
५४	१६	मो	मोः	६२	१३	देह	देहः
५५	१२	रूपरन्त	रूपान्त	६३	११	माकुरु:	माकुरु
		रङ्ग:	रङ्ग:	६७	१७	मक्षिपे	मक्षिपे
५५	१४	ईप्सायै	ईप्सायै	६४	२०	दुर्जरान्	दुर्जरा
५५	१८	जलयान	जलयानं	६८	६	तीन	नाने
५७	११	त्वं	त्वं			॥ इति ॥	

श्रीजिनायनमः

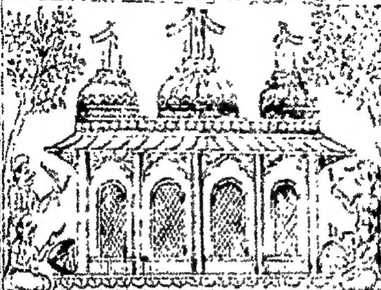
भूमिका

॥ दो०॥ वन्दू श्रीजिनपद कमल॰ प्रीतिरीति मनधार।
। सुखदायक दुखक्षयकरन॰ असरण जन आधार।
विद्वज्जन चरणाम्बुज रज अमनसिंह जैन सुनपत न
नर निवासी धर्म्मप्रेरक कवि कोविद जनोंकी सेवामें
निवेदन करताहै कि इस पञ्चमकाल विषे बहुतथोड़
पुरुषहैं जो प्राकृतवा संस्कृत विद्याके ज्ञाताहों अज्ञान ज
नोंके लाभार्थ धर्म्मकी उन्नतिमें अपना काल व्यतीतकर
के आनंद मानतेहों सो इस कालमें धर्मस्नेही सकल गु
ण निवास श्री १०१ पण्डित मिहरचंद्र दासजैनी सुनपत
निवासीने मम प्रार्थनार्थ अति अनुग्रहकर श्री सज्ज
न चित्तवल्लभ संस्कृत काव्य मुनिवर श्रीमल्लिषेणा।
चार्य्यकृतका (जो पच्चीस श्लोक सार्दूल विक्रीडित छ
न्दमें मुनि उपदेशक अति उत्तम ग्रन्थहै) टीका कियाहै
जिसका क्रम येहै प्रथम पदच्छेद पुनः संस्कृत टी
का जिसमें शब्द २ का दूसरा पर्य्याय शब्द रक्खाहै पु
नः संस्कृतमें अन्वय कियाहै फिर भाषा वार्तिकमें अर्थ
कियाहै फिर प्रतिश्लोकका भाषा छंदमें अनुवादकर अ
र्थ प्रकाशिका नाम धराहै और कार्तिक सु० १३ सं० १९४७
में पूर्ण किया जहांतक मेरा विचारहै इस उत्तम ग्रंथकी
टीका अबलों किसी विद्वानने नहीं रची ऐसे गुणी जनों
को कोय कोटी धन्यवाद व प्रार्थनाहै कि यह उत्तम ग्रंथका

सबे छोटे बड़ों के प्रियहो संसारमें प्रसिद्ध हो ॥

इसग्रंथकीटीकाकीसमस्या

अङ्क	समस्या	प्रयोजन
१	अ	अव्ययः
२	पु-अ	पूर्वकालिक अव्ययः
३	भ-अ	भविष्यत कालिक अव्ययः
४	क्रि	क्रिया
५	क्रि-वि	क्रिया विशेषण
६	१——	लकीर के बामे अंक से विभक्ति जानना सो प्रथमा से सप्तमी पर्य्यंत जैसा अंक देखो तैसे जानना।
७	——१	लकीरके दाहने अंकसे विभक्ति के वचन जानना सो एक से तीन तक जैसा देखो वैसा जानना।



श्रीजिनायनमः

मूल

नत्वा वीरजिनं जगत्त्रय गुरुम्मु
क्ति श्रियो वल्लभं। पुष्पेषु क्षय
नीति वाण निवहं संसार दुःखा
पहं। वक्ष्येभव्य जन प्रबोध जन
नं ग्रन्थं समासादहं। नाम्ना सज्ज
न चित्त वल्लभ मिमं शृण्वन्तु स
न्तोजनाः ॥१॥ [टीका]

महावीरं नमस्कृत्य। गुरूञ्च वाणी सरस्वतीं।
सज्जनं चित्त प्रियस्येमां। करोम्यर्थ प्रकाशिकां।

पदच्छेदः

नत्वा वीरजिनं जगत्त्रयगुरुं मुक्तिश्रियो वल्लभं
पुष्पेषु क्षयनीतिवाण निवहं संसारदुःखापहं

वन्दे भव्यजनप्रबोध जननं ग्रन्थं समासात्
अहं नाम्ना सज्जन चित्त वल्लभं इमं शृण्व
न्तु सन्तः जनाः ॥१॥

संस्कृत टीका

[नत्वा] प्रणम्य [वीरजिनं] श्रीमहावीर स्वा
मिन मन्त्य तीर्थेश्वरं [जगत्त्रय गुरुं] उर्द्धाधोम
ध्यवर्तिनां जगतां हितोपदेशकं [मुक्तिश्रियः]
मोक्षलक्ष्म्याः [वल्लभं] प्रियवरं-भर्तारं [पुष्पे
षु दर्पनीतिवारण निवहं] कामस्य शोषण
तापनो च्चाटन मोहन वशी करण रूपानां प
ञ्च बाणानां नाशाय ब्रह्मचर्य्य वारणस्य धार
कं [संसार दुःखापहं] जगतो जन्म मरण जरा
दिजानां चतुर्षु गतिषूद्भवानां कष्टानां निवार
कं [वक्ष्ये] कथयिष्ये [भव्यजन प्रबोध जननं]
मोक्ष गामिनां पुरुषाणां ज्ञानप्रदं [ग्रन्थं] शा
स्त्रं [समासात्] संक्षिप्तात् [अहं] मल्लिषेणाचा
र्य्यः [नाम्ना:] अभिधेयेन [सज्जन चित्त व
ल्लभं] सत्पुरुषाणां मनसां प्रियं अथवा सज्ज
न चित्त वल्लभ नामानं [इमं] वक्ष्यमाणं
[शृण्वन्तु] करण विषयी भूतं कुर्वन्तु ॥१॥

अन्वयः

अहम्मल्लिषेणाचार्य्य इमं ग्रन्थं वक्ष्ये (किं कृत्वा) वीरजिनं नत्वा (कथम्भूतं वीरजिनं) जगत्त्रयगुरुं (पुनः कथम्भूतं) मुक्ति श्रियां वल्लभं (पुनः कथम्भूतं) पुष्पपुञ्जय नीति वाण निवहं (पुनः कथम्भूतं) संसार दुःखा पहं (कथम्भूतं ग्रन्थं) भव्यजन प्रबोध जननं (पुनः) नाम्ना सज्जन चित्त वल्लभं (कस्मात्) ससासान् सन्तोजनाः शृगवन्तु ॥१॥

भाषाटीका

मैं मल्लिषेणाचार्य्य महावीर स्वामी तीन जगत के गुरु मुक्ति स्त्रीके भर्त्तार कामदेव के पोषण १ तापन २ उच्चाटन ३ मोहन ४ वशीकरण ५ रूप पाँचवाण के नाश करणको पाँन्न वाण के धरणहारे जगत के दुखहारेको नमस्कारकरके इस सज्जन चित्त वल्लभ नाम। ग्रन्थको (जो भव्यजनोंको ज्ञानका देने वाला है) कहूँगा सज्जन सुनो। ॥१॥

भाषाछन्द

छप्पय

श्रीमतवीर जिनेश त्रिजग गुरु मुक्ति रमणि वर 'पुष्पवाण जय हेन धंग।

जिन ब्रह्मवाणा कर। जग दुख नाशन हा र बार बहु सीस निवाकर। सज्जन चित वल्लभ सुकाव्य यह भव्य बोध कर। मैं रचूं सुनों तुम सन्तजन मल्लि षेण मुनि कहत इम तसु अर्थ लेय। भाषा बिषे छन्द मिहरचन्द रचत तिम १

॥ मूलम् ॥

रात्रिश्चन्द्रमसा बिनाब्ज निवहै।
र्नोभाति पद्माकरो यद्वत्पंडि
त लोक वर्जित सभा दन्तीवदन्तं
विना पुष्पं गन्ध विवर्जितं मृत
पतिः स्त्रीचेह नद्वन्मुनि श्चारित्रे
णविना नभाति सततं यद्यप्य।
सौ शास्त्रवान् ॥२॥

पदच्छेदः

रात्रिः चन्द्रमसा विना अब्जनिवहैः नो भाति पद्माकरः यद्वत् पण्डित लोकवर्जित सभा दन्ती इव दन्तं विना पुष्पं गन्धविवर्जितं मृतपतिः स्त्री च इह तद्वत् मुनिः चारित्रेण बिना न भाति सततं यद्यपि असौ शास्त्रवान्

संस्कृत टीका

[रात्रिः] निशा [चन्द्रमसा] चंद्रेण [विना] निर्पेध-रहिता [अब्जनिवहैः] कमलसमूहैः [नो] न [भाति] प्रकाशते-शोभते [पद्माकरः] सरः [यद्वत्] यथा [पण्डित लोक वर्जित सभा] विद्वज्जनैः रहितासदः [दन्ती] हस्ती [इव] तु ल्यं [दन्तं] रदनं [विना] निषेधं [पुष्पं] कुसुमं। [गन्धविवर्जितं] सौरभरहितं [मृतपतिः] हृत भर्त्री-विधवा [स्त्री] नारी [च] पुनः [तद्वत्] तथा [मुनिः] यतिः [इह] अस्मिनलोके [चारित्रेण] आचारेण [विना] रहितः [नभाति] नशोभते। [सततं] निरन्तरं [यद्यपि] यदि च [असौ] अयं [शास्त्रवान्] आगमवित ॥२॥

अन्वयः

यद्वत् चन्द्रमसा विना रात्रिः [पुनः] अब्जनिवहै र्विना पद्माकरः [पुनः] पण्डित लोक वर्जित सभा [पुनः] दन्तं विना दन्ती [पुनः] गन्ध विवर्जितं पुष्पं (पुनः) मृतपतिः स्त्रीः इह नाभाति तद्वत् चारित्रेण विना सततं मुनिः नाभाति यद्यप्यसौ शास्त्रवान भवेत इतिशेषः॥२॥

भाषाटीका

जैसैं चाँदके बिना रात और कमल समूह के बिना सर और पण्डित लोक बिना सभा और दाँतो के बिना हाथी और गंधके बिना पुष्प और पति के बिना स्त्री की शोभा नहीं है तैसैं यहाँ चारित्र के बिना मुनीकी शोभा नहीं है यद्यपि यह पण्डित क्यों न हो ॥२॥

भाषाछन्द

मत्तगयन्द

चन्द्र बिना जिम रैन न सोहत पद्म समूह बिना सर जैसैं। पण्डित लोक विहीन सभा नहिं सोहत दन्त बिना गज वैसैं। गंध बिना जिम पुष्प न सोहत स्वामि बिना विधवा तिय तैसैं। पण्डित शास्त्र विपन्न मुनीश्वर चारित हीन न सोहत ऐसैं।२॥

मूलम्

किं वस्तु त्यजनेन भो मुनिरसावेतव्रताजायते। क्ष्वेडेनच्युत पन्नगोगतविषः किंजातवान् भूतले। मूलं किंतपसः क्षमेन्द्रियजयः सत्यंसदाचारता। रागादींश्च बिभर्ति चेन्नसय

तिर्लिंगी भवेत केवलम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः

किं वस्त्रत्यजनेन भोः मुनिः असौ एतावता जायते। क्ष्वेडेन च्युत पन्नगः गतविषः किं जातवान् भूतले। मूलं किं तपसः क्षमा इन्द्रियजयः सत्यं सदाचारता। रागादीन् च बिभर्ति चेत् न स यतिः लिङ्गी भवेत केवलम् ॥ ३ ॥

संस्कृतटीका

[किं] निषेधे [वस्त्रत्यजनेन] वसनत्यागेन [भोः] उत्तम सम्बोधने [मुनिः] यतिः [असौ] अयं [एतावता] एतावन्मात्रेण [जायते] भवति [क्ष्वेडेन] कञ्चुलिकया [च्युतः] रहितः [पन्नगः] सर्पः [गतविषः] रहितगरलः [किं] निषेधे [जातवान्] भूतवान् [भूतले] पृथ्वीपृष्टे [मूलं] कारणं [किं] प्रश्ने [तपसः] तपनस्य [क्षमा] सहिष्णुता [इन्द्रिजयः] स्पर्श रस घ्राण चक्षुः श्रोत्राणां पञ्चेन्द्रियाणां स्वस्वविषयेभ्यो [दमः] निरोधः [सत्यं] अनृत शून्यत्वं [सदाचारता] सच्चरणत्वं [रागादीन्] रागः प्रीतिः आदि शब्देन द्वेषः क्रोध मान माया लोभादयोपि ग्राह्याः चे.

पुनः [बिभर्ति] पोषयति [चेत्] यदि [लिङ्गी] वे
षधारी [भवेत्] भावेन [केवलम्] एकम् ॥३॥

अन्वयः

भोः [यते इतिशेषः] एतावता वस्त्रत्यजनेन।
असौ किम्मुनिर्जायते। क्ष्वेडेन च्युतपन्नगः भू
तले किं गतविषो जातवान्। तपसो मूलं किम्
। क्षमेन्द्रियजयः। सत्यं। सदाचारता। चेत्
रागादीन् बिभर्ति सः यतिर्न। केवलं लिङ्गी
भवेत् ॥३॥

भाषाटीका

भो यति क्या यह इस वस्त्रके ही त्यागने से मु
नि होजाता है केंचली के छोड़ने से क्या पृथ्वी
पर साँप निर्विष होजाता है तप का मूल क्या
है क्षमा इन्द्रियों का जीतना सत्य बोलना श्रेष्ठ
आचरण पालना और जो रागादिक को बढ़ा
या तो वह यति नहीं है केवल लिङ्गी अर्थात्
वेश धारी ही है ॥३॥

भाषाछन्द

भोयति केवल वस्त्र उतारन सों यह।
क्या मुनिही बनजावे। कांचलि छा
ड़न सों धरणी पर सर्प कहा बिषवर्जि

तथावै । मूल कर्मातप इन्द्रिय जीतन मन्य
क्षमा शुभ चारित गावैं । रागरु द्वेष जु पुष्टक
र नव नोहियतो पर लिंग वनावैं ॥ ३ ॥

मूलम्

देहे निर्ममता गुरौ विनयता नित्यं
श्रुताभ्यासता । चारित्रोज्ज्वलता
महोपशमता संसारनिर्वेगता ।
अन्तर्बाह्यपरिग्रहत्यजनता ध-
र्मज्ञता साधुता । साधो साधुजन-
स्य लक्षणमिदं संसारविक्षेपणम् ४

पदच्छेदः

देहे निर्ममता गुरौ विनयता नित्यं श्रुता-
भ्यासता चारित्रोज्ज्वलता महोपशमता सं
सार निर्वेगता अन्तर बाह्यपरिग्रहत्यजनता
धर्मज्ञता साधुता साधो साधु जनस्य लक्ष-
णम् इदम् संसार विक्षेपणम् ॥ ४ ॥

संस्कृतटीका

(देहे) शरीरे (निर्ममता) ममत्वपरित्यागः (गुरौ)
हितोपदेशके (विनयता) नम्रता (नित्यं)

सक्ता [कृताभ्यासता] शास्त्रस्य भूयो चिन्तनं [चारित्रोज्वलता] आचारस्य निर्मलत्ता [महोपशमता] क्रोधमानमायालोभादीनां कषायानां सम्यक्प्रकारेणोपशमनम् [संसार निर्वेगता] पञ्चपरावर्तनरूपसंसारे चतुर्षुगतिषूद्भवजन्ममरण जरादि दुःखेभ्योभीतिः [अन्तर वाह्यपरिग्रहत्यजनता] अन्तर वर्तिनां चतुर्दशधामिथ्यात्ववेद रागद्वेष हास्यरत्य रति शोक भय जुगुप्सा क्रोध मान माया लोभानां वहिः स्थां दशधा क्षेत्र वास्तु हिरण्य सुवर्ण धनधान्य दासी दास कुप्य भाण्डा नाञ्चैवञ्चतुर्विंशति धा परिग्रहाणांत्यागः [धर्मज्ञता] धर्मस्य वस्तुस्वभावस्य उत्तमक्षमामार्दवार्जव सत्य शौच संयम तपस्त्यागा किञ्चन ब्रह्मचर्य्याणां दशधा धर्मस्यवाज्ञात्वत्वं [साधुता] मुनेर्धर्मत्वं [साधो] हेयते [साधुजनस्य] मुनिलोकस्य [लक्षणं] चिन्हं [इदम्] पूर्वोक्तं [संसार विक्षेपणं] जगतोनाशकम् ॥ ४ ॥ अन्वयः

भोसाधोसाधुजनस्येदंवक्ष्यमाण लक्षणं संसारविक्षेपणमस्ति इतिशेषः [इदंकिम्]

निर्ममता [कस्मिन] देहे विनयता [कस्मि न्] गुरौ श्रुताभ्यासता [कदा] नित्यं चारित्र ज्वलता [महोपशमता] संसार निर्वेगता [अ न्तर बाह्य परिग्रहत्य जनता] धर्मज्ञता [साधु ता] ४

भाषा टीका

भोसाधु साधुजन के ये लक्षण संसार के नाश करण हारे हैं ते कौन हैं सो कहिये हैं शरीर में अपनायतन मानना गुरुजनों की विनय क रना सदा शास्त्र का अभ्यास करना चारित्र को मल न लगावना क्रोध मान माया लोभादि क षायों को उपशान्त करना संसार से डरना मि थ्यात्व १ वेद २ राग ३ द्वेष ४ हास्य ५ र ति ६ अरति ७ शोक ८ भय ९ जुगुप्सा१० क्रोध ११ मान १२ माया १३ लोभ १४ अ न्तरङ्ग के और क्षेत्र १ वास्तु २ हिरण्य ३ सुवर्ण ४ धन ५ धान्य ६ दासी ७ दा स ८ कुप्य ९ भाण्ड १० बाहर के ऐसे चौवीस प्रकार के परिग्रह का त्याग करना धर्म्म नाम वस्तु के स्वभाव का है तथा उत्तम क्षमा १ मार्द्दव २ आर्जव ३ सत्य ४ शौ च ५ संयम ६ तप ७ त्याग ८ आकिञ्चन

९ ब्रह्मचर्य्य १० रूप दश प्रकार हैं तिस-
का जानना और साधुपना ४

भाषाछन्द

देह बिषे ममता परित्याग गुरूजन मैं नतिशा
स्त्र अभ्यासा । चारित्र उज्वलता अधिकीश
मता भव भ्रान्ति थकी नित त्रासा । अन्तर-
बाहर त्याग परिग्रह साधुपना अरु धर्म्म वि
लासा । भो मुनि लक्षण साधुन का यह सं-
सृति नाशन को यम फांसा ॥ ४ ॥

मूलम्

किन्दीक्षाग्रहणेनते यदि धनाकां
क्षा भवेच्चेतसि । किङ्गार्हस्थ्यम-
नेन वेश धरणे नासुन्दरम्मन्यसे ।
द्रव्योपार्जनचित्तमेव कथयत्य
भ्यन्तरस्थाङ्गना । नोचेदर्थपरि
ग्रहग्रहमति र्भिक्षोन सम्पद्यते ५

पदच्छेदः

किम् दीक्षाग्रहणेन ते यदि धनाकां-
क्षा भवेत् चेतसि किम् गार्हस्थ्यम्
अनेन वेशधरणे

नं असुन्दरम् मन्यसे द्रव्योपार्जन चित्तम् एव क-
थयन्ति अभ्यन्तरस्याङ्ग-नाम् नोचेत् अर्थ परिग्रह
ग्रहमतिः भिक्षो न सम्पद्यते ॥ ५ ॥

संस्कृतटीका

(किन्) निषेधे- किमपिन (दीक्षाग्रहणेन) संयम
धारणेन-पुत्रकलित्रगृहादीनांत्यागेन (नि) नतु (य
दि) चेत् (धनाकांक्षा) द्रव्यस्यवाञ्छा (भवन्) स्यात्
(चेतसि) मनसि (किम्) प्रश्ने वितर्केवा (गार्हस्थ्यं)
गृहवासं (अनेन) पूर्वोक्तेन मनसि धनाकांक्षत्वाव
हिर्वस्त्रादीनांत्यागेन (वेषधारणेन) नग्नरूप
भवनेन (असुन्दरम्) अश्रेष्ठम् (मन्यसे) जानासि
(द्रव्योपार्जनचित्तम्) धनादीनामाहर्तृमनः (एव) नि
श्चयेन (कथयन्ति) वदति (अभ्यन्तरस्याङ्ग-नाम) अ
न्तर वर्त्तिनी स्त्रियं (नोचेत्) अन्यथा (अर्थपरिग्रहग्रह
मतिः) अर्थधनं तदेव परिग्रहः अर्थपरिग्रहः तस्यग्र
होग्रहणंतस्यमतिःवुद्धिः (भिक्षो) मुने (नसम्पद्यते) न
जायते ५०

अन्वयः

भो भिक्षो यदि ते चेतसि धनाकांक्षा भवेत् तर्हि
इतिशेषः दीक्षाग्रहणेन किं अनेन वेष

धरणे न किम् गार्हस्थ्यमसुन्दरंमन्यसे द्रव्यो पार्जन चित्तमेवाभ्यन्तरस्थाङ्गनांकथयति नो चेदर्थ परिग्रहग्रह मतिर्नसम्पद्यते ॥ ५॥

भाषाटीका

भो भिक्षुक जो तेरे चित्त मैं धन की चाह वर्तैहै तो दीक्षा लैने सेक्या अर्थात कुछ भी नहीं इस मुनि के वेश बनाने से क्या गृहस्थ पने को बुरा २ जानें है द्रव्यके उपार्जन का चित्त ही मनो वर्त्तनी नारी को बतलाता है नहीं तो धन रूप परिग्रहके ग्रहण करने की मति उत्पन्ननहीं होती ५

भाषाछन्द

जो धन की रुचि है उर अन्तर संयम धारण २ सार न जानै । ऐस अपावन वेश बनावन मै घर बार बुरा किम मानै । द्रव्य उपार्जन चित्त निरन्तर अन्तर कामनि चाह बखानै । नातर हे मुनि अर्थ परिग्रह लेन कि बुद्धि कदापि न ठानै॥५॥

मूलम् ॥

योषा पाण्डुक गो विवर्जित पदे

संतिष्ठ भिक्षोसदा । भुक्त्वाहार
मकारितं परगृहेलब्धं यथासम्भ
वम् । षड्धावश्यकसत्क्रिया-
सुनिरतोधर्म्मानुरागंवहन् । सा
र्द्धंयोगिभिरात्मभावनपरोरत्नत्र-
यालङ्कृतः ६

पदच्छेदः

योषा पाण्डुक गो विवर्जितपदे संतिष्ठ भिक्षो सदा भुक्त्वा आहारम् अकारितम् परगृहे लब्धम् यथा सम्भवं षड्धा आवश्यकसत्क्रियासु निरतः धर्म्मानुरागम् वहन् सार्द्धं योगिभिः आत्मभावनपरः रत्नत्रयालङ्कृतः ॥६॥

अन्वयः

[योषा] नारि [पाण्डुकं] नपुंसकम् [गोः पशवः] [वर्जितः] रहितः [पदे] स्थाने [संतिष्ठ] उपविश स्थिरोभव [भिक्षो] याचक [सदा] निरन्तरम् [भुक्त्वा] खादित्वा [आहारम्] अशनम् [अकारितम्] स्वप्रेरणां विना अन्येन स्वेच्छया दत्तदनम् [परगृहे] अन्यस्यागारे [लब्धम्] प्राप्तम् [यथासम्भवं] येन प्रकारेण सम्भवनीयम् [षड्धा] षट् प्रकार [आवश्यक

सत्क्रियासु] सामायिकञ्चतुर्विंशति तीर्थकरस्त वन वन्दना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान कायोत्सर्गाः षटप्रकाराः आवश्यक क्रियाः तएव सत्क्रियाः श्रेष्टा चरणानितासु [निरतः] लग्नः[धर्म्मानुरागं] उत्तमक्षमादि षु पूर्वोक्तेषु दशधाधर्म्मेषु [रागं] रुचिं [वहन्] धारयन् [सार्द्धं योगिभिः] मुनिभिःसह [आत्मभावन परः] चेतनस्वभावलीनः [रत्नत्रयालंकृतः] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूपै स्त्रिभी रत्नै र्भूषितः ॥ ६ ॥

अन्वयः

भो भिक्षो त्वं सदा योषा पाण्डुक गो विवर्जित पदे सन्तिष्ठ किं कृत्वा परगृहे यथा सम्भव सकारित माहारं लब्धं भुक्त्वा कथम्भूतः सन् षडावश्यक सत्क्रियासु निरतः पुनः धर्म्मानुरागं वहन् पुनः योगिभिः सार्द्धं आत्मभावन परः पुनः रत्नत्रयालङ्कृतः ॥ ६ ॥

भाषा टीका

हे मुनि पराए घर विना वनवाए भोजनको जो दैव योगसे जैसा तैसा तुझको मिलजावै खाकर सामायिक १ चौवीस तीर्थंकर स्तवन २ वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ का

योत्सर्ग ६ छह आवश्यक रूप सत्क्रियाओं में लीन हुवा दश लक्षण धर्म्म में राग धारता आत्म भाव में लगा हुवा रत्नत्रय कर भूषित मुनि जनों की साथ नारी नपुंसक पशु रहित स्थानमें तिष्ट ॥ ६ ॥

भाषा छन्द

नारि नपुंसक पशु विवर्जित थान विषै नित तिष्ट भिखारी। लेकर भुक्त अकारित जो पर गेह मिला विधिके अनुसारी। पाल अवश्यक षट् सुक्रियारत धर्म धुरन्धर हो अनगारी। साधुन साथ समागम आतम लीन त्रिरत्न विभूषण धारी ॥ ६ ॥

मूलम्

दुर्गन्धं वदनं वपुर्मल भृतम्भिक्षाटनाद्भोजनं। शय्या स्थण्डिल भूमिषु प्रतिदिनं कट्यांनते कर्पटं। मुण्डं मुण्डित मर्द्ध दग्ध शव वत्त्वं दृश्यते भोजनैः। साधो द्याप्य बलाजनस्य भवतो गोष्ठी कथं रोचते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः

दुर्गन्धं वदनं वपुः मलभृतं भिक्षाटनात् ।

भोजनम् शय्यास्थण्डलभूमिषु प्रदिदिनम् कट्यां नं ते कर्पटं मुण्डं मुण्डितं अर्द्धदग्ध गयवत् त्वम् दृश्यते भोः जनैः साधो अद्यापि अबलाजनस्य भवतः गोष्ठी कथम् रीचते ॥ ७ ॥

संस्कृत टीका

[दुर्गन्धं] असौरभम् [वदनम्] मुखम् [वपुः] शरीरम् [मलभृतम्] रजसा लिप्तम् [भिक्षाटनात्] अर्हनार्थं गमनात् [भोजनम्] अशनम् [शय्या] शयनम् [स्थण्डिलभूमिषु] कठिन धरणीषु [प्रतिदिनम्] नित्यं [कट्यां] नितम्बे [नं] नव [कर्पटम्] कौपीनम् [मुण्डं] शिरः [मुण्डितम्] केशरहितम् [अर्द्धदग्ध] गयवत् [अर्द्ध प्लुष्टमृतके न तुल्यम् [त्वम्] मध्यम पुरुषैक वचन वाचिनः सर्वनाम्नो वाच्यः [दृश्यते] प्रतीयते [जनैः] लोकैः [साधो] मुने [अद्यापि] अद्य पर्य्यन्तमपि [अबलाजनस्य] नारीलोकस्य [भवतः] तव [गोष्ठी] वचनालापः [कथम्] केनप्रकारेण [रीचते] कास्यते ॥ ७ ॥

अन्वयः

भी साधो भवतः अद्यापि अबलाजनस्य गो
ष्ठी कथं रोचते नेवदनम् दुर्गन्धम् वपुः मल
भृतम् भोजन भिक्षाटनात् स्थण्डिल भूमि
षु प्रतिदिनं शय्या कट्यां कर्पटं न मुण्डम्
मुण्डितम् पुनः जनैः स्वमर्द्ध दग्ध मावयत्
दृश्यते ॥ ७ ॥

भाषा टीका

भो साधु तेरे मुखसे तो दुर्गन्ध आतीहै और
शरीर रजसे मलीन होरहाहै और भीख मां
ग कर भोजन करताहै और कठोर कंकरीली
भूमिपर नित्य सोताहै कटिमें कोपीन तक
भी नहींहै लोगों की दृष्टिमें आधे जले हुवे
मृतक समान दृष्ट पड़ता है अब लौं भी स्त्री
जनों की साथ वचनालाप करने को तेरा मन
कैसे लुभाता है ॥ ७ ॥

भाषा छन्द

आवत गन्ध बुरी मुखमें अरु धूसर
अङ्ग भिक्षाकर खाना। भूमि कठोर विषे
नित सोवन ना कटिमें कोपीन प्रमाना। मु
ण्डित मुण्ड परे दृग लोकन अर्द्ध जले मृत
अङ्ग समाना। नारिन के संग भोमांन अद्यपि

चाहत क्यौं कर बात बनाना ॥ ७ ॥

मूलम्

अङ्गं शोणित शुक्र सम्भव मिदम्मे
दोस्थि मज्जा कुलम् । वाह्ये माक्षि
क पत्र सन्निभ महो चर्म्मा वृतं सर्वतः
। नोचेत्काक बकादि भिर्वपुर हो ।
जायेत भक्ष्यं ध्रुवं । दृष्ट्वाद्यापि श
रीर सद्मनिकथं निर्वेगता नास्तिते ।
॥ ८ ॥

पदच्छेदः

अङ्गं शोणित शुक्र संभवम् इदम् मेदोस्थि
मज्जाकुलम् वाह्ये माक्षिक पत्र सन्निभम्
अहो चर्म्मा वृतम् सर्वतः नोचेत् काक
बकादिभिः वपुः अहो जायेत भक्ष्यम्
ध्रुवं दृष्ट्वा ऽद्यापि शरीर सद्मनि कथम्
निर्वेगता न अस्तिते ॥ ८ ॥

संस्कृत टीका

[अङ्गम्] शरीरम् [शोणित शुक्र सम्भवम्]
रक्त वीर्य्याभ्यां जातम् [इदम्] सन्मुखी भूत
म् [मेदोस्थि मज्जा कुलम्] वसा काकसा
स्थि सारै भृतम् [वाह्ये] वहिः [माक्षिक पत्र

सन्निभम्] मक्षिकायाः पत्रसतुल्यम [अहो] आश्चर्यं [चर्म्मावृतम] चर्म्मणा वेष्टितम। [सर्वतः] समन्ततः [नोचेत] नान्यथा [काक वकादिभिः] वायस वलाकादिभिः मांसभक्षि भिर्जन्तुभिः [वपुः] शरीरम् [अहो] शोके [जायेत] भवेत [भक्ष्यम] भोक्तुं योग्यम [ध्रुवं] निश्चि तम [दृष्ट्वा] वीक्ष्य [अद्यापि] इदानीमपि [शरीर सद्मनि] देहागारे [कथम] किमर्थम [निर्वेगना] संसारे भ्रमणात् भीतिः [ते] त्वाम [नास्ति] न विद्यते ॥ ८ ॥

अन्वयः

अहो इदमङ्गम् दृष्ट्वा अद्यापि शरीर सद्मनि ते निर्वेगता नास्ति कथम्भूतमङ्गम् शोणित शुक्र सम्भवम् पुनः मेदोऽस्थि मज्जाकुलम पुनः बाह्ये सर्वतः माक्षिकपत्रसन्निभम् पुनः चर्म्मा वृतम् नोचेत काक वकादिभिः इदं वपुः भक्ष्यं जायेत ॥ ८ ॥

भाषाटीका

यह शरीर लोहू औरवीर्य्यसे उत्पन्न भयाहै हाड मांस मज्जादि अपावन वस्तुसे भराहै बा हिरसे माखीके पंख समान चामके लपेटन में

सब ओड़से लिपटा हुवाहै नहींतो कागबगला
दिक जन्तुवोंका खाजा होजावै यह देखकरभी
जो तुझको शरीर रूप घरमें विरक्तता नहींहै तो
बड़ा आश्चर्य्य वा शोकहै ॥ ८ ॥

भाषाछन्द

शोणित वीरजसों उपजीयह देह अपावन
वस्तु भरीहै । बाहिर माक्षिक पंख समा
न जु चाम लपेटन सों सुथरीहै । नातर वा
यस और बकादिक भुञ्जत संशय कोन
करीहै । यों लख अद्यापि तैं वड़ विस्मय
देह विषै ममता न हरीहै ॥ ८ ॥

मूलम्

दुर्गन्धं नवभिर्वपुः प्रवहति द्वारै रि-
दं सन्ततं । तद्दृष्ट्वा पिच यस्य चेतसि
पुन निर्वेगता नास्ति चेत् । तस्यान्य
द्भुवि वस्तु कीदृश महो तत्कारणं क
थ्यतां । श्रीखण्डादिभि रङ्ग संस्कृ
तिरियं व्याख्याति दुर्गन्धताम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः

दुर्गन्धं नवभिः वपुः प्रवहति द्वारैः इदं सन्त
तम् तत् दृष्ट्वा अपि च यस्य चेतसि पुनः निर्वे

गतो न अस्ति चेत् तस्य अन्यत् भुवि वस्तु, कीदृशम् अहो तत्कारणम् कथ्यताम् श्री खण्डादिभिः अङ्ग संस्कृतिः इयम् व्याख्याति दुर्गन्धताम् ॥ ९ ॥

संस्कृतटीका

[दुर्गन्धम] असौरभम [नवभिः] संख्या न दशभिः संख्या प्रमाणैः [वपुः] शरीरम [प्रवहति] स्रवति [द्वारैः] छिद्रैः इदं सन्मुखी भूतं सन्ततं [निरंतरं [तत] पूर्वोक्तं [दृष्ट्वा] वीक्ष्य [चापुनः [चेतसि] मनसि [मनः] चाऽयं [निर्वेगता] वैराग्यम् [नास्ति] न विद्यते [चेत] यदि [तस्य] एवं दृष्ट्वापि निर्वेगता प्रकारिणः पुरुषस्य [अन्यत] इतरत [भुवि] पृथिव्याम [वस्तु] पदार्थः [कीदृशम] किन्नाम धेयम् केनतुल्यंवा [अहो] आश्चर्यं [तत्कारणं] तस्यहेतुं [कथ्यतां] प्रोच्यतां [श्रीखण्डादिभिः] कश्मीर चन्दनादिभिः [अङ्ग संस्कृतिः] शरीरस्य शृङ्गारः [इयं] पूर्वोक्त संस्कृतिः पूर्वोक्ता अङ्ग संस्कृतिः [व्याख्याति] प्रकटी करोति [दुर्गन्धताम्] असौरभम् ॥ ९ ॥

अन्वयः

इदं वपुः दुर्गन्धं नवद्वारैः सततं प्रवहति तद्

ष्ट्वापि यस्य चेतसि चेत् निर्वेगता नास्ति अहो त
स्य भुवि अन्यत कीदृशं वस्तु तत्कारणम् भ
वति इति शेषः कथ्यताम् उच्यतां श्रीखण्डा
दिभि रियं संस्कृतिः दुर्गन्धतांख्याति ॥ ९ ॥

भाषाटीका

यह शरीर दुर्गन्धवान है नव द्वारोंसे निरन्तर
फिरेहै तिसको देखकेभी जिसके चित्तमें यदि
विरागता नहीं है सो कहिये पृथ्वीपर और कौ
नसी वस्तु तिसके वैराग्यकी कारण है यह
चन्दनादिक का संस्कार दुर्गन्धता को प्रघट
करताहै ॥ ९ ॥

भाषाछन्द

देहबुरी दुर्गन्ध भारीयह नौमल द्वार बहैं
नितयासं । ताहि बिलोक न होत बिराग ।
अहो चितमें इम पूछत तासूं । कौन अपाव
न वस्तु धरापरहो विरती चितमें लखजासूं
केसर आदि सुगंधित बस्तु लहैं दुर्गन्ध ।
स्यशेत तासूं ॥ ९ ॥

मूलम्

स्त्रीणां भाव बिलास विभ्रमगतिं दृ
ष्टानुरागं मना । म्मागास्त्वं विषवृक्ष

पक्वफलवत्सुस्वादवन्त्यस्तदा । ई
पत्सेवनमात्रतोऽपिमरणं पुंसांप्रयच्छ
न्तिभोः । तस्माद्दृष्टिविषाहिवन्नारीः
रत्वंदूरतोमृत्यवे ॥२०॥

पदच्छेदः

स्त्रीणां भावविलासविभ्रमगतिं दृष्ट्वा अनुरागं
मनाक् मागाः त्वं विषवृक्ष पक्व फलवत् सुस्वा
दवन्त्यः तदा ईषत्सेवनमात्रतः अपि मरणं पुं-
सां प्रयच्छन्तिभोः तस्मात् दृष्टि विषाहिवत् नारीः
हर त्वं दूरतः मृत्यवे ॥२०॥

संस्कृत टीका

[स्त्रीणां] नारीणां [भाव विलास विभ्रम गतिं]
अङ्गोपाङ्ग रत चेष्टां [दृष्ट्वा] वीक्ष्य [अनुरा
गं] मोहं [मागाः] मागच्छ [विष वृक्ष प-
क्व फलवत्] हाला हलस्य नरोः परिणतेन-
फले न तुल्य [सुस्वादवन्त्यः] मनोज्ञरसेन
युक्ताः [तदा] तस्मिन्काले [ईषत्सेव
न मात्रतः] किञ्चिद्भोगनादेव [मरणं]
नाशं [पुंसां] नराणां [प्रयच्छन्ति]
ददति [भोः] सम्बोधनं [तस्मात्]

तनोहेतोः [दृष्टिविषाहिवत्] दृष्टौ विषंयस्य स दृष्टि विषः सस्वाहिः दृष्टिविषाहिःसर्प्य विशेषः तेनतुल्यं [परिहर] परित्यज [दूरतः] दूरात् [मृत्यवे] जीवनाय ॥१०॥

अन्वयः

भोयते स्त्रीणाम्भाव विभ्रमे विलास गतिं दृष्टा त्वं मनागपि अनुरागंमागाः कथम्भूताः स्त्रियः विष वृक्ष पक्व फलवत् सुस्वादवन्त्यः पुनः ई षत्सेवनामात्रतोपि पुंसां मरणं प्रयच्छन्ति तस्मात् दृष्टि विषाहिवत् त्वं मृत्यवे दूरतो परिहर ॥१०॥

भाषा टीका

भोयति स्त्रियों की भाव विलास विभ्रम गति को देख तू टुक भी अनुराग मत कर यें स्त्री जन विष वृक्ष के पक्के फलवत् श्रेष्ट स्वादु वाली हैं और तनक से सेवन मात्र से पुरुषों को मृत्यु देती हैं भावार्थ जैसें विष के वृक्ष का पक्का फल खाने में तो मीठा होता है परन्तु थोड़ासा खाय भी प्राण जाते हैं तैसें ही स्त्रीजन भी भोग काल में अच्छी लगती हैं परन्तु अन्तमें नरकादि दुर्गति को पहोंचाती हैं तो इसलिये दृष्टिविष

जानि के सर्प समान तू इनको दूर से ही त्यागा रे ॥

भाषाछन्द

देख त्रिया जन की गति विभ्रम और विलास न हो अनुरागी । है विषवृक्ष तने फल पक्क समान सुस्वाद न मैं रस पागी । किञ्चित सेवन से नर याकर मृत्यु लहै दुख पाय अभागी । तासु न दूर रहि तें नज कामन दृष्टि त्रियाहि समान विरागी ॥

मूलम्

यद्यद्वाञ्छति तत्तदेव वपुषे दत्तं सु
पुष्टं त्वया । सार्द्धं नैति तथापि ते
जड़मते मित्रादयो यान्ति किम् । पु
ण्यं पाप मिति द्वयञ्च भवतः पृष्ठ-
नुयाती हते । तस्मान्मास्मकृथास
नागपि भवान्मोहं शरीरादिषु ॥२१॥

पदच्छेदः

यद् यद् वाञ्छति तद् तद् एव वपुषे दत्तं
सु पुष्टं त्वया सार्द्धं न एति तथा अपि ते
जड़मते मित्रादयः यान्ति किम् पुण्यं पाप

इति द्वयं च भवतः पृष्टे अनुयाति इह ते न
स्मात् मास्म कथाः मनाक् अपि भवान् मोहं
शरीरादिषु ॥११॥

संस्कृतटीका

[यद्यद्] यानि यानि भोज्य वस्त्रादीनि वस्तूनि
[वाञ्छति] आकांक्षति [वपुषे] शरीराय [दत्तं]
त्यक्तं [सुपुष्टं] बलदायि [त्वया] भवता [सा
र्द्धं] सह [नैति] नगच्छति [तथापि] तदापि [ते] तव
[जडमते] मन्दबुद्धे [मित्रादयः] मित्रंसखा आदिशब्देन
कलत्र बांधवप्रभृतयः [यान्ति] गच्छन्ति [किम्] निषे
धे न गच्छन्ति इतिभावः [पुण्यं] पूजादानादिशुभकृत्यं
[पापं] हिंसामृषादि पञ्च पाप रूपम शुभकृत्यं [द्वयं]
द्वन्द्वः [भवतः] तव [पृष्टे] पश्चात् [अनुयाति] अनुगच्छति
[इह] अस्मिन्लोके [ते] तव [तस्मात्] ततोहेतोः [मास्म-
कथाः] माकुरु [मनागपि] अल्पमपि [भवान्] त्वं [मोहं]
स्नेहं रागंवा [शरीरादिषु] शरीरं वपुः आदिशब्देन मित्रक
लत्र धन धान्यादयः ११ अन्वयः
हे जडमते इदं शरीरं यद्यद् वस्तु भक्तः वा
ञ्छति त्वया तत्तदेव वपुषे सुपुष्टं वस्तु दत्तं
तथापि तद् शरीरं तेसार्द्धं नैति तदा मित्राः

दय: किंचाणि ऊकने पुण्यं पापञ्च द्वयं भवत:
पृष्ठे अनुयाति तस्मात् शरीरादिषु भवान् मनाग
पि मोहं मास्म कार्षी: ११

भाषा टीका

हे जड़मति जो जो वस्तु मांगी सो सो पुष्ट वस्तु तैंने
शरीर को दई तौ भी यह शरीर तेरा साथ नहीं जाता
तो मित्रादिक कैसे जांगे तेरे पुण्य पाप ही दोनों य
हां तेरे पीछे चलेंगे इसलिये इक भी शरीरादिक
में मोह मतकर ॥ ११ ॥

भाषा छन्द

जो कुछ मांगत वस्तु सु पोषक तू तनको नित देत
अज्ञानो । तौ पुण यह तव संग न जावहि मित्रन
की फिर कौन कहानो । पुण्य रु पाप चलैं तव
पीछहु तू इन दोवन का अगवानो । यांतैं त्व छो
ड शरीर प्रभृतिन में यह मोह महा दुख खानो ११

मूलम्

शोचन्ते न मृतं कदापि वनिता य
द्यस्ति गेहे धनं तच्चेन्नास्ति रुद
न्ति जीवन धिया स्मृत्वा पुन: कृ
त्यहं कृत्वा तद्दहनं क्रिया निज

निज व्यापार चिन्ताकुलाः तन्नामा
पिच विस्मरन्ति कतिभिः सम्वत्सरैः
योषिताः १२

पदच्छेदः

शोचन्ते न मृत कदापि वनिताः यदि अस्ति
गेहे धन तद् चेत् न अस्ति रुदन्ति जीव
न धिया स्मृत्वा पुनः प्रत्यह कृत्वा तदहन
क्रिया निज निज व्यापार चिन्ताकुलाः तन्ना
म अपि च विस्मरन्ति कतिभिः सम्वत्सरैः
योषिताः १२

संस्कृत टीका

[न शोचन्ते] न शोकं कुर्वन्ति [मृतं] त्यक्त प्राणं [कदापि] कस्मिन् कालेपि [वनिताः] स्त्रियः [यदि] चेत् [अस्ति] वर्त्तते [गेहे] आगारे [धनं] वित्तं [तद्] पूर्वोक्तधनं [नास्ति] न भवति [रुदन्ति] शोकाक्लिष्टाः सन्त्यः अश्रुपातं विमोचयन्ति जीवनधिया प्राणानां रक्षण बुद्ध्या स्वभाभूत् यदस्माकं प्राणाः नश्येयुः स्मृत्वा विचिन्त्य पुनः अभीक्ष्णं प्रत्यहं प्रतिदिनं नित्यं कृत्वा विधाय तदहनक्रियां तस्य मृतकशरीरस्याग्नि संस्कार विधानं

निज निज व्यापार चिन्ता कुलाः स्वस्व कार्येषु
दत्त चित्ताः तन्नामापि तत्र कस्य नामधेयम
पि विस्मरन्ति नहीदं ... वनिताः कियद्
भिः संवत्सरैः वर्षैः योषिताः नार्यः १२

अन्वयः

यदि गेहे धनमस्ति नहि वनिताः मृतं कदापि न शोचन्ते चेद्धनं नास्ति पुनः स्वम्हं जीवन धिया तं मृतं स्मृत्वा रुदन्ति तद्दहन क्रियां कृत्वा संबन्धिलोकजनाः निज निज व्यापार चिन्ता कुलाभवन्ति योषिताश्च कतिभिः वत्सरैः तन्नामापि वि

स्मरन्ति १२

भाषा टीका

जो घर मैं धन है तौ स्त्री भी मरे पतिका शोक नहीं करती हैं और जो धन नहीं है तौ अपनेको देने की इच्छा धारण कर प्रति दिन मरे पतिको स्मरण करके रोती हैं उसकी दग्ध क्रिया होने पर सम्बंधी जन अपने अपने कार्य्यों में चिन्तातुर होजाते हैं कुछ वर्ष व्यतीत होने पर अवलागन उसका नाम भी भूल जाती हैं १२

भाषाछन्द

जो घर मैं धन हो न कदापि करै तिय सोच म-
रे वलभा की । जो नहि हो धन तौ नित शेव्रत -
धार हिये अभिलाष जिवा की । दग्ध किये प
र सर्व कुटुंबिन स्वार्थ लगैं ममता तज ताकी ।
केतिक वर्ष गए अवलाजन भूलहि नाम नलैं
सुधि वाकी १२

मूलम्

अष्टाविंशतिभेदमात्मनि पुरासंरो
प्यसाधोव्रतं साक्षीकृत्य जिनान्
गुरूनपि कियत्कालंत्वया पालितं
भक्तुं वाञ्छसि शीतवात विहतो भूत्वा
धुना तद्व्रतं दारिद्रोपहतः स्ववान्त
मशनं भुङ्क्ते सुधार्तोपि किम् १३।

पदच्छेदः

अष्टा विंशति भेदं आत्मनि पुरा संरोप्य साधो
व्रतं साक्षीकृत्य जिनान् गुरून् अपि किय-
त् काल त्वया पालित भक्तुं वाञ्छसि शी-
त वात विहितः भूत्वा अधुना तद् व्रत दारि-

द्रौपदत्तैः स्ववान्ते अशनैः भुङ्क्ते सुधानैः अपि किम् ॥ १३॥

संस्कृत टीका

(अष्टाविंशतिभेदं) अष्टभिरधिका विंशतिर्भेदाः प्रकाराः यस्य तद् प्रकारा नाह अहिंसा १ सत्यं २ अचौर्य्यं ३ ब्रह्मचर्य्यं ४ अपरिग्रहः ५ एवं पञ्च महाव्रतानि। ईर्य्या १ भाषा २ एषणा ३ आदाननिक्षेपणं ४ प्रतिष्ठापनं ५ एवं पञ्च समितयः स्पर्शनं १ रसनं २ घ्राणं ३ चक्षुः ४ श्रोत्रं ५ पञ्चेंद्रियाणि तेषां स्वस्व विषयेभ्यो बलात्कारेण व्यावर्त्तनमिति पञ्चेन्द्रिय विजयः षडावश्यका स्ते पूर्वमेव षष्टम काव्यस्य टीकायां कथिताः भूमीशयनं १ स्नानत्यजनं २ दन्तधावन त्यागः ३ वस्त्रत्यजनं ४ केशलोचनं ५ उद्दण्डमहारः ६ अल्पभोजनं तदपि दिने एकवार मेव ७ (आत्मनि) स्वस्मिन् (पुरा) पूर्वस्मिन् काले (संराप्य धृत्वा साधो) मुनि (व्रत) पूर्वोक्त मष्टाविंशतिभेदं नियमं (साक्षीकृत्य साक्षान् दर्शनं कृत्वा (जिनान्) केवलिनः (गुरून्) जैन यतीन् (अपि) निर्धारणे (कियत्काले

कानि चिह्नानि (त्वया) भवता (पालितं) पोषितं (भक्तुं) त्रोटयितुं (वाञ्छसि) का मयसि (शीत वात विहतः) शीत वायुभ्यां पीडितः (भूत्वा) सित्वा (अधुना) इदानीं (तद् व्रतं) पूर्वं कथितं व्रतं (दारिद्रोपहतः) धनराहित्येनापद्ग्रस्तः (स्ववान्तं आत्मनो वमनं (अशानं) भोजनं (भुङ्क्ते) खादति क्षुधार्तः बुभुक्षया पीड़ितः किम् निषेधे न भुङ्क्ते इतिभावः ॥ २३ ॥

अन्वयः

हे साधो पुरा त्वया जिनान् गुरून् अपि साक्षीकृत्य अष्टाविंशतिभेदात्मकं व्रतं आत्मनि संरोप्य कियत्कालं पालितं अधुना शीत वात विहतो भूत्वा तद् व्रतं भङ्क्तुं वाञ्छसि दारिद्रोपहतः क्षुधार्तोऽपि किं स्ववान्तमशनं भुङ्क्ते नभुंक्ते इति भावः २३

भाषा टीका

हे साधु तूने पहिले केवलि भगवान और जैन गुरों की साक्षि लेकर अठाइस मूल गुण युक्त जिनके नाम अहिंसा १ सत्य २ अचौर्य्य ३ ब्रह्मचर्य्य ४ अपरिग्रह ५ ये पाँच महाव्रत। ईर्य्या १ भाषा २ एषणा ३ आदान निक्षेप

ण ४ प्रतिष्ठापन ५ ये पाँच समिति स्पर्शन १ रसन २ घ्राण ३ चक्षु ४ श्रोत्र ५ इन पांचों इन्द्रियों का अपने अपने विषयमें बलात्कार कर रोकना ये पाँच इन्द्रिय विजय छह आव श्यक तिनका स्वरूप इसग्रंथकी छठी काव्य के टीकामें कियाहै भूमिशयन १ स्नानत्यज न २ दन्तधावनत्याग ३ वस्त्रत्यजन ४ केश लोच ५ उद्दण्ड आहार ६ अल्पभोजन सोभी एक दिनमें एकवार इनको आप धारण किया और कुछ काल लों उसको पाला अब शीत और वायुकी वेदनासे विह्वल हुवा उसको तोड़ना चाहताहै क्या दीन दरिद्री पुरुष भी भूखसे पीड़ित हुवा अपनी वमनको आ परवाताहै भावार्थ नहीं खाताहै ॥ १३ ॥

भाषाछन्द

आठरु विंशति मूल गुणा तम नें मुनि पूर्व मंम व्रत लीना । देव गुरु जन साख हिय धर कें तिक कालजु पालन कीना । शीतरु वायुन ने दुखसें उर खंडनमें तिसके चित दीना । दीन क्षुधातुर ने भिकहीं निज छर्द नना किम भोजन कीना ॥ १३ ॥

मूलम्

अन्येषां मरणं भवान गणयन्स्व स्यामरत्वंसदा देहिन् चिन्तय-सीन्द्रिय द्विपवशी भूत्वा परि भ्रा म्यसि अद्यश्वः पुनरागमिष्याति यमो नज्ञायते तत्वत स्तस्मादात्म हितं कुरुत्वस चिराद्धर्म्मं जिनेन्द्रोदितम् ॥ ॥ २४ ॥ ॥

पदच्छेदः

अन्येषां मरणं भवान् अगणयन् स्वस्य अमरत्वं सदा देहिन् चिन्तयसि इन्द्रिय द्विपवशी भूत्वा परि भ्राम्यसि अद्य श्वः पुनर् आगमिष्यति यमः न ज्ञायते तत्वतः तस्मात् आत्महितं कुरु त्वं अचिरात् धर्मं जिनेन्द्रोदितं ॥ ॥ २४ ॥ ॥ संस्कृतटीका

[अन्येषां] इतरेषां [मरणं] प्राणवियोगं [भवान्] त्वं [अगणयन्] अविचारयन् [स्वस्य] आत्मनः [अमरत्वं] मरणराहित्यं जीवनत्वमिति [सदा] शश्वत् [देहिन्] आत्मन् [चिन्तयसि] विचारयसि [इन्द्रिय द्विपवशीभूत्वा] स्पर्शन रसन घ्राण चक्षुः श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि तान्येव गजः तस्य पादाक्रान्तः सित्वा [पार

भ्राम्यसि शश्वत् भ्रमणं करोपि पर्य्यटसि संसारे इति शेषः अद्य वर्तमाने दिने श्वः आगामिनि दिने पुनः वा पक्षान्तरे आगमिष्यति आयास्यति कालः मृत्युः नज्ञायते नावगम्यते त्वया इति शेषः तत्वतः निश्चयेन तस्मात् ततः कारणात् आत्महितं स्वेष्ट साधनं कल्याणं कुरु विदधातु अचिरात् शीघ्रं धर्मं त्वं जिनेन्द्रोदितं केवलिना प्रणीतं ॥ ॥१४॥ ॥

अन्वयः

हे देहिन् भवान् अन्येषां मरणं मगणयन् स्वस्य सदा अमरत्वं चिन्तयसि इन्द्रिय द्विपवशी भूत्वा परिभ्राम्यसि तत्वतः यमोऽद्य पुनः श्वः आगमिष्यति इतिन ज्ञायते तस्मात् आत्महितं जिनेन्द्रोदितं धर्मंत्वं अविरात् कुरु ॥१४॥

भाषा टीका

हे आत्मा तू औरों के मरने को नहीं गिणता हुवा सदा अपने तईं अमर चिन्ते है इन्द्रिय रूप हाथी का दवाया हुवा भ्रमता फिरै है ठीक यहै नहीं जानता कि काल आज या कल्ह अवश्य आवेगा इसलिये अपना हितकारी सर्वज्ञ की कही का कहा धर्म तू शीघ्र धारण कर १४

भाषाछन्द

औरन का मरना अविचारत तू अपना अमरत्व विचारै । इन्द्रियरूप महा गजका वशि भूत भया भव भ्रान्ति निहारै । आजहि आवत वा कलके दिन कालन तू यह रञ्च चितारै । तौ यह धर्म्म जिनेश्वर भाषित भो भव सन्तति बेग निवारै ॥ २४ ॥

॥ मूलं ॥

सौख्यं वाञ्छसि किं त्वया गतभवे दानं तपो वा कृतं । नो चेत्त्वं किमिहैव मेवलभसे लब्धं तदत्रागतं । धान्यं किं लभते विनापि वपनं लोके कुटुम्बी जनो । देहे कीटकभक्षितेन सदृशे मोहं वृथा मा कृथाः ॥ २५ ॥

पदच्छेदः

सौख्यं वाञ्छसि किम् त्वया गतभवे दानं

नपः वा कृतं नोचेत् त्वं किम् इदं एवं एव
लभसे लब्धं नेदं अत्र आगतं धान्यं किम
लभते विना अपि वपनं लोके कुटुंबी ज
नः देहे कीटक भक्षित इक्षु सदृशं मोहं त्व
या मा कृथाः ॥ १५ ॥

संस्कृतटीका

[सौख्यं] आनन्दतां [वाञ्छसि] आकांक्षसि
[किम्] प्रश्ने [त्वया] भवता [गतभवे] पूर्वस्मि
न् जन्मनि [दानं] त्यागः न चैापध्याहारा भ
य शास्त्र भेदै श्चतुर्धा अथवा राग द्वेषयोः
परिहारः [तपः] तपनं तच्च अनशना वमौ
दर्य्य व्रत परि संख्यान रस परि त्याग वि
वक्त शय्यासन कायक्लेश भेदैः षड्धा व
हिरङ्गं प्रायश्चित्त विनय वैया वृत्य स्वाध्या
य व्युत्सर्ग ध्यान भेदै रन्तरङ्ग श्च षड्धा
एवं द्वा दश भेदं [वा] पक्षान्तरं [कृतं] विहितं
[नोचेत्] अन्यथा [त्वं] भवान् [किम] निषेधे
[एवं] इत्थं [एव] निश्चयेन [लभसे] गृह्णा
सि [लब्धं] प्राप्तं [अत्र] अस्मिन् लोके [आ
गतं] आयातं [धान्यं] शालिः [किम] निषेधे
[लभते] गृह्णाति [विना] वर्जने [अपि] निधा
रणे [वपनं] अन्नोत्पत्त्यर्थे [भूमौ] शालियव

दीनां क्षेपणं [लोके] संसारे [कुटुम्बी] कृषाणः [जनः] पुरुषः [देहे] शरीरे [कीटकभक्षिते क्षु सदृशे] कृमिखादिते [इक्षु दण्ड तुल्ये [मोहं] रागं [माकृथाः] माकुरुस्व ॥१५॥

अन्वयः

हे प्राणिन् त्वं सौख्यं वाञ्छसि किन्त्वयागत भवे दानं वा तपः कृतं नोचेत् इहि त्वं सेवं किम् लभसे यद्लब्धं तदत्रागतं लोके कुटु- म्बीजनः किं बपनं विनापि धान्यं लभते कीटक भक्षिते क्षुसदृशे देहे वृथा मोहं मा कृथाः ॥१५॥

भाषा टीका

हे जीव तू जो सुख की बान्छा करता है क्या तूने पूर्व जन्म में दान दिया था वा तप किया था जो नहीं किया तो इस लोक में यह सुख- तुझको कैसें मिले जैसा पूर्व किया था वैसा यहां प्राप्त भया संसार में किसाण लोग बिना बोए भी कहीं धान्य उठाले हैं कीड़े के खाए ईख समान इस शरीर में तू वृथा मोह म- त कर ॥॥१५॥॥

भाषाछन्द

चाहत है सुख क्या पिछले भवदान

दिया अरु संयम लीना । नानक या मन
तें सुख पावत कौन भई सो पुराकृत बी-
ना । कौटक मंदिर देख समान शरीर नि-
पै तज मोह प्रवीना ॥ १५ ॥

मूलम्

आयुष्यं तव निद्रयार्द्धमपरं चा-
युस्त्रिभेदा दहो बालत्वं जरया
कियद् व्यसनता यातीति देहिन
वृथा निश्चित्यात्मनि मोह पाश
मधुना संछिद्य बोधासिना मुक्ति
श्रीवनितावशीकरण सच्चारित्र
माराधय ॥१६॥

पदच्छेदः

आयुष्यं तव निद्रया अर्द्धं अपरं च आयुः त्रि
भेदात् अहो बालत्वं जरया कियत् व्यसनतः
याति इति देहिन वृथा निश्चित्य आत्मनि
मोहपाशं अधुना संछिद्य बोधासिना मुक्तिश्री
वनिता वशीकरण सच्चारित्रं आराधय ॥ १६ ॥

संस्कृत टीका

[आयुष्यं] जीवनं [तव] ते [निद्रया] स्वप्नेन [अ
र्द्धं] एकस्य द्वौ भागौ कृत्वा तयोरेको भागः [अ
परं] द्वितीयो भागः [च] इतरे तर योगे [आ
युः] प्राण धारणं जीवनं [त्रिभेदात्] त्रिभिर्भा-
गैः [अहो] शोके विस्मयेवा [बालत्वे] शैश
वे अज्ञानदशायां [जरया] वार्धके क्षीण शरी
रे [कियत्] किञ्चित् [व्यसनतः] विषय सेव
नात् तारुण्ये इतिभावः [याति] गच्छति [इति] ए
वं [देहिन्] आत्मन् [वृथा] निरर्थकं [निश्चित्य
निश्चयंकृत्वा दृढीकृत्वा [आत्मनि] स्वस्मि
न् [मोहपाशं] रागरज्जुं [अधुना] इदानीं [सं
छिद्य] भित्वा [बोधासिना] ज्ञानखड्गेण [मु-
क्ति श्री वनिता वशीकरण सच्चारित्रं] मोक्ष ल
क्ष्मी रूपां स्त्रियं वशीकारकं श्रेष्ठाचरणं [आरा
धय] गृहाण, धारय ॥ १६ ॥

अन्वयः

हे देहिन् अहो तव अर्धमायुष्यं निद्रया अ
परं चार्द्धं आयुष्यं बालत्वेजरया कियत् व्यस
नतः त्रिभेदात् वृथा याति अधुना आत्मनि

एवं निश्चित्य चार्यामिना मोहपाशं सोक्-
य मुक्ति श्रीवनिता वशीकरण सच्चारित्रं मा-
राधय ॥ १६ ॥

भाषाटीका

हे आत्मा शोक वा विस्मय का स्थान है तेरी
आयु का आधा भाग तो नींद में जाता है और दू-
सरा आधा भाग वालपन बुढ़ापा और तरुणाई
में तीन भाग होकर वृथा जाता है अब तूने आप
में निश्चय करके ज्ञानरूप खड्ग से मोह रूप फां-
सी को काटकर मोक्ष लक्ष्मी रूप स्त्री के वशीक-
रण हारे श्रेष्ठ चारित्र को धारण कर ॥ १६ ॥

भाषाछन्द

आयुष अर्द्ध अरे मति मन्द व्यतीत भई
तव नींद मंझारी । अर्द्ध विभाग बुढ़ाप
न शैशव यौवन के वश व्यर्थ विसारी ।
आतम में दृढ़ धार सुधी गह ज्ञान असि
मुह पाश विदारी । मुक्ति रमा रमणी व
श कारण हो नित सम्यक चारित्र-
धारी ॥ १६ ॥

मूलम्

यत्कालेलघुपात्रमण्डितकरो भूत्वापरेषांगृहे। भिक्षार्थंभ्रमसेतदाहिभवतोमानापमानेनकिम्। भिक्षोतापसवृत्तितःकदशनात् किंतप्यसेऽहर्निशम्। श्रेयार्थंकिलसह्यतेमुनिवरैर्वाधासुधाद्युद्भवा: ॥ १७ ॥

पदच्छेदः

यत्काले लघुपात्र मण्डित करः भूत्वा परेषां गृहे, भिक्षार्थं भ्रमसे तदा हि भवतः मानापमानेन किम् भिक्षो तापस वृत्तितः कदशनात् किम् तप्यसे अहर्निश श्रेयार्थे किल सह्यते मुनिवरैः वाधा सुधाद्युद्भवा ॥ १७ ॥

संस्कृतटीका

[यत्काले] यस्मिन समये [लघु पात्र मण्डितकरः] लघु पात्रेण मण्डितः करोयस्य क्षुद्र भाजन युक्त पाणिः [भूत्वा] सित्वा [परेषां] अन्येषां [गृहे] निवासे [भिक्षार्थं] भोजनाय [भ्रमसे]

गच्छामि भ्रमणं करोमि (तदा) तस्मिन काले (हि) योगेय (भवनः) तव (मानापमानेन) सत्कार तिरस्काराभ्यां (किम्) किमपि न (भिक्षो) भिक्षाय जीविन् (तापस वृत्तितः) तपस्वीनामाचरणात् (कदशनात्) कुत्सित भोजनात् (किम्) कथं (तप्यसे) खेदं प्राप्नोषि (अहर्निशं) दिवारात्रं (श्रेयार्थे) कल्याणाय (किल) निश्चयेन (मन्ये) तेभ्यस्येते (मुनिवरैः) मुनिषु वराः श्रेष्ठाः तैः (य तिश्रेष्ठैः) (बाधा) पीड़ा (क्षुधाद्युद्भवा) क्षुधाभा गनेच्छा आदिशब्देन पिपासा दयोपि ग्राह्याः क्षुधा आदिर्येषांते क्षुधादयः तेभ्यः उद्भवती ति क्षुधा द्युद्भवा ॥१७॥

अन्वयः

हे भिक्षो यत्काले लघुपात्र मण्डित करो भू त्वा त्वमितिशेषः परेषां गृहे भिक्षार्थे भ्रमसि त दा हि भवतो मानापमानेन किम् अहर्निशं ताप सवृत्तितः कदशनात किं तप्यसे मुनिवरैः कि ल श्रेयार्थे क्षुधाद्युद्भवा बाधा सह्यते ॥१७॥

भाषाटीका

हे भिक्षुक जिसकालमैं तू हाथमैं छोटा पात्र लेकर भिक्षाके अर्थ औरोंके घरमें फिरता है तिसकालमें तुझको मान और अपमान से क्या दिनरात तापस वृत्ति और अरोचक भोजन से क्यों दुखी होता है अपने कल्याण के अर्थ महा मुनि क्षुधा पिपासादि जनित बाधा को सहते हैं ॥१७॥

भाषा छन्द

जाक्षण मैं लघु पात्र लिये परगेहमें भीखजु मांगन जावे। ताक्षणमें अपमान रु मान कहा तव मान न भीख मंगावे। भो मुनि तापस हो दिन रैन न अप्रिय भोजन से दुख पावे। मुक्त्यभिलाषि महामुनि कष्ट सहैंहि जु भूख रु प्यास दिखावे ॥ १७॥

मूलम्

एकाकी विहरत्यनस्थितबलीवर्दो यथास्वेच्छया। योषामध्यरतस्तथा त्वमपि भोस्त्यक्त्वा... यूथं यते। तस्मि... दभिलाषतानभ

यतः किम्भ्राम्यसि प्रत्युत । मध्ये साधुजनस्य तिष्ठसि न किं कृत्वा सदाचारताम् ॥२८॥

पदच्छेदः

एकाकी विहरति अनस्थिरवलीवर्दः यथा स्वेच्छया योषामध्यगतः तथा त्वं अपि भो त्यक्त्वा आत्मयूथं यते तस्मिन् चेत् अभिलाषता न भवतः किम् भ्राम्यसि प्रत्युत मध्ये साधुजनस्य तिष्ठसि न किम् कृत्वा सदाचारतां ॥२८॥

संस्कृतटीका

(एकाकी) असहायः अद्वितीयः (विहरति) विचरति (अनस्थिरवलीवर्दः) चञ्चलस्थिति रहित चलिष्ठ वृषभः (बिजार) इतिभाषायां (यथा) येनप्रकारेण (स्वेच्छया) आत्मनः कामनया (योषामध्यगतः) नारीजनेषु दत्तमनाः (तथा) तेनप्रकारेण (त्वमपि) भवानपि (भोः) उत्तमसंबोधने (त्यक्त्वा) परित्यज्य (आत्मयूथं) स्वगणं (यते) मुने (तस्मिन्) नारीमध्ये (चेत्) य

दि [अभिलाषा] आकांक्षा [न] निषेधे [भवतः] तव [किम्] कथं [भ्रास्यसि] भ्रमणं [करोषि] प्रत्यहं] प्रतिदिनं [मध्ये] अन्तर [साधुजनस्य] मुनि लोकस्य [तिष्ठसि] उपविशसि [क्षत्वा] धृत्वा [सदाचारतां] सम्यक् चारित्र ॥ १८ ॥

अन्वयः

भोयते यथा अनस्थित वलीवर्दः योषा मध्य रतः आत्म यूथं त्यक्त्वा एकाकी स्वेच्छया विहरति तथा त्वमपि विहरसि इतिशेषः यदि भवतो भिलाषा तस्मिन्न तर्हि इति इतिशेषः प्रत्यहं साधुजनस्य मध्ये किं न तिष्ठसि ॥ १८ ॥

भाषाटीका

भोयति जैसें चञ्चल बिजार स्वजातीय स्त्रियों मैं रत हुआ अपने यूथ को छोड़कर इच्छापूर्वक एकला फिरता है तैसें ही तू भी विचरै है जो स्त्रियों मैं तेरी अभिलाषा नहीं है तो प्रतिदिन क्यौं भ्रमता फिरै है सम्यक् चारित्र को धारण कर साधुजनौं के मध्य क्यों नहीं रहता ॥ १८ ॥

भाषाछन्द

साँड समान अनास्थित हो विचरै तु असं-
गस्वछन्द अकेला । छाड दियो निजसंग-
तिको अबलाजन सोकर आपन मेला । जानि
नसैं अभिलाप नहीं तबतों दिनरैन भ्रमै कि-
मरैला । क्योंन रहै मुनिसंगति में धर उत्तम-
चारित पन्थसुहेला ॥१८॥

मूलम्

क्रीतान्नं भवता भवेत्कदशनं गे
हस्तदा श्लाघ्यते । भिक्षायां यद
वाप्यते यतिजनैस्तद्भुज्यते त्वाद
रात् । भिक्षो भाटकसद्मसन्निभ
तनोः पुष्टिं वृथा माकृथाः । पूर्णे किं
दिवसावधौ क्षणमपि स्थास्यतु यमो
दास्यति ॥ १९ ॥

पदच्छेदः

क्रीतान्नं भवता भवेत् कदशनं गेहः तदा श्ला
घ्यते भिक्षायां यद् अवाप्यते यतिजनैः तद्
भुज्यते अति आदरात् भिक्षो भाटक सद्म स-
न्निभतनोः पुष्टिं वृथा माकृथाः पूर्णे किम् दिव
सावधौ क्षणम् अपि स्थास्यतु यमः दास्यति ॥१९॥

संस्कृत टीका

[क्रीतान्नं] द्रव्येण गृहीतं भोजनं [भवता] त्वया [भवेत्] स्यात् [कदशनं] अप्रियभोजनं [रोषः] क्रोधः [तदा] तस्मिन्काले [श्लाघ्यते] शोभते प्रतिष्ठायाति [भिक्षायां] अर्दनाया [यद्] श्रावकजनैर्दत्तभोजनं [अवाप्यते] प्राप्यते [यतिजनैः] मुनिलोकैः [तद्] पूर्वोक्तं लब्ध भोजनं [भुज्यते] भक्ष्यते [अत्यादरात्] बहुसत्कारात् [भिक्षो] यते [भाटकसद्मसन्निभतनोः] तत्स्वामिनं किञ्चिद्धनं दत्वा निवासार्थं गृहीत गृहेण तुल्यस्य शरीरस्य [पुष्टिं] पोषणं [माकृथाः] माकुरु [पूर्णे] पूर्णतायाते [किम्] निषेधे [दिवसावधौ] दिनानामन्ते आयुषन्ते [क्षण] समयं क्षणस्तु निमेष क्रियायाश्चतुर्थोभागः कालः [स्थातुं] स्थिरीभवितुं [यमः] मृत्युः [दास्यति] दासिष्यति ॥ १९ ॥

अन्वयः

भो भिक्षो यदि इतिशेषः कदशनं भवता क्रीतान्नं भवेत् तदा त्वया रोषः श्लाघ्यते भिक्षायां यद् वाप्यते यतिजनैः तदत्यादरात् भुज्यते भा

टक सद्म सन्निभतनोः वृथा पुष्टि मालब्धाः
दिवसावधा पूर्णं किम् यमः स्यातुदम्यनि ।१८

भाषाटीका

हे भिक्षुक यदि अस्वादु भोजन लगभग दे कर
लिया हुवा हो तो तुझको क्रोध भी करना है भिक्षामें जो
मिल जाता है साधुजन उसको अति आदर से खा
ते हैं भाड़े के घर समान शरीर को वृथा पुष्ट मन
कर जब आयु के दिनों की अवधि पूर्ण हो जावेगी
तब क्या काल ठहरने देगा ॥१८॥

भाषा छन्द

जो असुहावन भोजन कौन किया तब
होय तु रोष भिखो है । साधु तु आदर से
वहि भुंजत जो कुछ आय पिरापत होवे ॥
भिक्षुक भाटक गेह समानन देह कु पुष्ट
वृथा कर खोवे । पूरण आयु भए क्षणग
क भिना यमराज ठरावन को है ॥१८॥

मूल्यम्

लब्ध्वार्थं यदि धर्मदान विषये
दातुं नये: शक्यते । दारिद्र्यापह
तास्तथापि विषया सांतिन मुञ्च

न्तियें धृत्वा ये चरणं जिनेन्द्र
गदितं तस्मिन्सदानादरा । स्तेषां
जन्म निरर्थकं गतमजा कण्ठेस्त
नाकारवत् ॥ २० ॥

पदच्छेदः

लब्ध्वा अर्थं यदि धर्मदान विषये दातुं न
यै: शक्यते दारिद्रोपहताः तथापि विषयाश
क्तिं न मुञ्चन्ति ये धृत्वा ये चरणं जिनेन्द्र
गदितं तस्मिन् सदा नादराः तेषां जन्म निर
र्थकं गतं अजाकण्ठे स्तनाकारवत् ॥ २० ॥

संस्कृत टीका

[लब्ध्वा] प्राप्य [अर्थं] वित्तं [यदि] चेत् [ध
र्म्मदान विषये] चपत्यागमध्ये, उत्तमक्षमा
मार्दवार्जवसत्य शौच संयम तपस्त्यागा कि
ञ्चन ब्रह्म चर्य्याणि एवं दशधा धर्म्मः दान
ञ्च औषधाहारा भय विद्या भेदाच्चतुर्धा [दा
तुं] दासितुं [न] निषेधे [यैः] पुरुषैः [शक्य
ते] समर्थ्यते [दारिद्रोपहताः] द्रव्या भावेन
संक्लिष्टाः [तथापि] तदपि [विषयासक्तिं] वि
षयलीनतां, रागपरणतिं [न] निषेधे [मुञ्च

न्ति। त्यजन्ति। ये। ये पुरुषाः। धृत्वा। अङ्गीकृत्य। चरणं। चारित्रं। जिनेन्द्र गदितं यो सर्वज्ञ के वर्णिता प्रणीतं। तस्मिन। पूर्वोक्त चारित्रे। सदा। सर्वस्मिन् काले। नादराः। सत्कार रहिताः। तेषां। पूर्वोक्त पुरुषाणां। जन्म। शरीर धारणं। निरर्थकं। निष्प्रयोजनं। गतं। यातं। अजा कण्ठे। छागी गले। स्तनाकार वत्। चूचका कृति तुल्यं ॥ २० ॥

अन्वयः

यदि अर्थं लब्ध्वापि धर्म्मदान विषये दातुं न शक्यन्ते येदारिद्रोपहताः तथापि विषया शक्तिं न मुञ्चन्ति ये जिनेन्द्र गदितं चरणं धृत्वा तस्मिन् सदा नादराः वर्त्तन्ते ज्ञानि शेषः तेषां जन्म अजा कण्ठे स्तनाकार वत् निरर्थकं गतं ॥ २० ॥

भाषाटीका

जो नर धन को पाकर धर्म्म दान में नहीं लगाते हैं और निर्धन हैं तो भी विषय वासनाको नहीं छोडते हैं और जो भगवत प्रणीत चारित्र को धारण कर सदा उसमें सत्कार रहित

वतैं हैं जिनका जन्म बकरी के गले में चूचीके आकार वत् वृथा जाता है ॥ २० ॥

भाषाछन्द

जो धन पाय न दान करै अरु धर्म विषै नहि ताह लगावें। होय दरिद्र तथापि विषातुर छांडत नांहि विषै दुख पावें। धार हिये जिन भाषित चारित भाव अनादरता बिच लावें। जन्म निरर्थ अजा गल चूचक के समते भुवि भार कहावें। ॥२०॥

मूलम्

लब्ध्वा मानुषजातिमुत्तमकुलमरूपंचनीरोगतां। बुद्धिंधीधनसेवनसुचरणश्रीमज्जिनेन्द्रोदितम्। लेभार्यवसुपूर्णहेतुभिरलंस्तोकायसौरव्यायमो। देहिन्देह सुपोलकं गुणभृतं भक्तुं किमिच्छास्तिते ॥२१॥

पदच्छेदः

लब्ध्वा मानुषजातिं उत्तमकुलं रूपं च नीरो-

गतो बुद्धि धीधन सेवनं सुचरणं श्रीमज्जिनेन्द्रोदितं लोभार्थं वसुपूर्णहेतुभिः अलं स्तोकाय सौख्याय भोः देहिन् देहसुपोतकं गुणभृतं भंक्तुं किम् इच्छा असि ते ॥ २१ ॥

संस्कृतटीका

[लब्ध्वा] प्राप्य [मानुषजातिं] नरत्वं [उत्तमकुलं] उत्कृष्ट सजातीयगणं [रूपं] सौन्दर्यं [च] पुनः [नीरोगतां] रोगराहित्यं, कुशलतां, स्वास्थ्यं [बुद्धिं] ज्ञानं [धीधनसेवनं धीः बुद्धिरेवधनं येषांतैः सेवनं प्राज्ञपुरुषैः कृतशुश्रूषां [सुचरणं] सम्यक्चारित्रं [श्रीमज्जिनेन्द्रोदितं] समवसरणादिबाह्यविभूतिभिरनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य्यरूपअन्तरङ्ग श्रियो नाथेन भगवता केवलिना प्रणीतं [लोभार्थं] इच्छायै लोभस्तु चतुर्षु कषायेष्वन्तरंगतो चतुर्थकषायः [वसुपूर्णहेतुभिः] द्रव्यस्य पूर्णतायाः कारणैः [अलं] पूर्णं [स्तोकाय] अल्पाय [सौख्याय] आनन्दाय [देहिन्] आत्मन् [देहसुपोतकं] शरीररूपसुष्ठुजलयानं [गुणभृतं] गुणान् बिभर्तीति गुणभृत् तंवा गुणैः भृतं गुणभृतं [भंक्तुं] छेत्तुं [किम्] कथं [इच्छा] वाञ्छा [अ

स्ति] वर्त्तते [ते] तव ॥ २१ ॥

अन्वयः

भो देहिन् मानुषजाति मुत्तम कुलं रूपं नीरोग तां बुद्धिं धीधन सेवनं श्रीमज्जिनेन्द्रोदितं सुचरणं चलब्ध्वावसु पूर्ण हेतु भिर्लोभार्थ स्तोकाय सौख्याय गुणभृतं देह सुपोतकं भक्तुं ते इच्छा अलंकिमस्ति ॥ २१ ॥

भाषाटीका

हे आत्मा मानुषजाति उत्तम कुल रूप नीरोगतां बुद्धि पण्डितजन कृत सेवा समव सरणादिक वाह्य विभूति और अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य्य रूप अन्तरंग लक्ष्मी के नायक श्रीसर्वज्ञ केवली प्रणीत सम्यक् चारित्र को पाकर लोभ के अर्थ धनकी पूर्णता के कारण थोड़े सुख के लिये गुणों के भरे हुए शरीर रूप श्रेष्ठ प्रोहण के तोड़ने को तेरी इच्छा क्यों भर पूरी होरही है ॥ २१ ॥

भाषाछन्द

पाकर मानुष भौ कुल उज्वल सुन्दर रूप नरामय काया । बुद्धि सुधीजन सेवित पाद भयो जिन भाषित चारित पाया

लोभवशी धन सञ्चय कारण भी मुख किञ्चित देत भमाया। आनम् द्रुत सुपीत गुणाकरनादि बिदारणकी चित लाया ॥२१॥

मूलम्

वेतालाकृतिमुद्धदग्धमृतकं दृ
ष्ट्वा भवन्तियते। यासांनास्तिभ-
यंत्वयासममहोजल्पन्तितास्त-
त्पुनः। राक्षस्योभुवनेभवन्तिव-
निताभामागताभक्षितुं मत्वैवं
प्रपलाप्यतांमृतिभयात्वंनत्रमा
स्याः क्षणम् ॥२२॥

पदच्छेदः

वेतालाकृतिं उद्धदग्ध मृतकं दृष्ट्वा भवन्ति ये ते यासां न अस्ति भयं त्वया समं अहो जल्पन्ति ताः तद् पुनः राक्षस्यः भुवने भवन्ति वनिताः मां भक्षितुं आगताः मत्वा एवं प्रपलाप्यतां मृतिभयात् त्वं तत्र मास्याः क्षणम् ॥२२॥

संस्कृत टीका

[वेताला कृतिं] प्रेताकारं [अर्द्धे दग्ध मृतकं] अर्द्धे भस्मीभूतेन शवेन तुल्यं [दृष्ट्वा] वीक्ष्य [भवन्तं] त्वां [यते] मुने [यासां] स्त्रीणां [नास्ति] न विद्यते [भयं] भीतिः [त्वयासमं] भवतासार्धं [अहो] आश्चर्ये [जल्पन्ति] वचनालापं कुर्वन्ति [ताः] स्त्रियः [तद्] वचनं [पुनः] द्वितीय वारे [राक्षस्यः] हिंसकाः [भुवने] लोके [भवन्ति] सन्ति [वनिता] नार्य्यः [मां] स्वं [आगताः] आयाताः [भक्षितुं] खादितुं [मत्वा] निश्चयीकृत्य [एवं] इत्थं [प्रपलाय्यतां] धाव [मृतिभयात्] मृत्योः भीतेः त्वं भवान् तत्र तस्मिन् स्थाने यत्र स्त्रियो भवन्ति वासितेषु मास्था मातिष्ठ क्षण समयं, अल्पकालं ॥ २२ ॥

अन्वयः

भोयते वेतालाकृतिं अर्द्धे दग्ध मृतक भवन्तं दृष्ट्वा यासां भयं नास्ति पुनः त्वया समं अहो तद् जल्पन्ति ताः वनिताः भुवने राक्षस्यो भवन्ति मां भक्षितुं मागता एवं मत्वा मृतिभयात् प्रलाय्यतां त्वं तत्र क्षणं मास्थाः ॥ २२ ॥

भाषाटीका

भार्यान जिन स्त्रियोंको अंताकार अर्थात् जल स्तु
तक की समान तुम को देखकर भय नहीं लाना औ
र फिर तेरा साथ वचना आप करनी है ते नारकोको
क में राक्षसी है से भक्षण करने को आई है रा
से मानकर तू मरण के भय से भाग तनी क्षण-
मात्र भी मत ठहर ॥ २२॥

भाषाछन्द

भो मुनि अद्ध जले शव तुल्य निहार तु
के अरु भूत समाना । भीतिनहीं जिन
के घट में पुन बोलत तो संग शंकत आ-
ना । राक्षसी है वनिता मम भक्षण को उ-
तरी यह जान सुजाना । भाग हिये धर
मृत्यु तनो भय तिष्टन क्यों क्षण एक प्र-
माना ॥ २२॥

मूलम

मागास्त्वं युवती गृहेषु सततं वि
श्वासतां संशयो । विश्वासे जन
वाच्यता भवति न नश्यंत पुमर्थे
ह्यतः । स्वाध्यायानुरतो गुरूक्त-
वचनं शीर्षे समारोपय । लिप्त

त्वं विकृतिं पुनर्व्रजसि चेद्यासि
त्वमेव क्षयम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः

मागाः त्वं युवती गृहेषु सततं विश्वासता संशयः विश्वासे जनवाच्यता भवति ते नश्येत् पुमर्थं हि अतः स्वाध्यायानुरतः गुरूक्तवचनं शीर्षे समारोपयन् तिष्ठ त्वं विकृतिं पुनर् व्रजसि चेत् यासि त्वं एव क्षयम् ॥२३॥

संस्कृतटीका

[मागाः] मागच्छ [युवती गृहेषु] स्त्रीणां निवासेषु [सततं] निरन्तरं [विश्वासता] श्रद्धां, मत्ययं [संशयः] सन्देहः [विश्वासे] श्रद्धायां [जन वाच्यता] लोकानांकथनी [भवति] स्यात् [ते] तव [नश्येत्] क्षयेत्, नाशं प्राप्नुयात् [पुमर्थं] पुरुषार्थं [हि] निश्चयेन [अतः] अस्मात् हेतोः [स्वाध्यायानुरतः] शास्त्राभ्यासेऽनुरक्तः [गुरूक्त वचनं] गुरुभिः कथितं वाक्यं [शीर्षे] मस्तके [समारोपयन्] धारयन् [तिष्ठ] स्थिरीभव [त्वं] भवान् [विकृतिं] विपरीतं [पुनर्] पक्षान्तरे [व्रजसि] गच्छसि [चेत्] यदि [यासि] प्राप्नोषि [त्वमे

व) भवानेव (क्षयं) नाशी ॥२३॥

उन्वय:

त्वं सततं युवती गृहेषु विश्वासनो मागाः विश्वा से ते जन वाच्यता संशयश्च भवति पुमर्थं हि नश्येत् अतः त्वं स्वाध्याया नुरता गुरूक्त वचनं शीर्षे समारोपयं स्तिष्ट चेन पुनर्विकृतिं भ्रजेत् त्वमेव क्षयं यासि ॥२३॥

भाषा टीका

हे मुनि तू निरन्तर स्त्रियोंके घरसे विश्वास मत कर विश्वास में तेरी ओड़से सन्देह और लोक कहावत होगी और पुरुषार्थ नष्ट होगा। इसलिये स्वाध्याय में लीन हुवा गुरों के कहे हुवे वचनों को मस्तक पर धार कर तिष्ट और जो उलटा चलेगा तो तेरी ही हानि होगी ॥२३॥

भाषा छन्द

नारिन के घरका विशवास कदापि न चित्त में रञ्चहु लावे। ताहि किये नव ओड़सु संशय हो पुरुषारथ सर्व नशावे। हो रत पञ्च स्व पाठन में गुरु भाषित वैन तु सीस चढ़ावे। जो इसके विप-

रीत चलै मुनि तौ निज नाश करै दुख पावै ॥२३॥

मूलम्

किं संस्कारशतेन विट्जगति भोः काश्मीरजं जायते । किन्देहः शुचितां ब्रजेदनुदिनं प्रक्षालनादम्भसा । संस्कारो नखदन्तवक्त्रवपुषां साधो त्वया युज्यते । ना कामी किल मण्डनप्रिय इति त्वं सार्थकं मा कृथाः ॥२४॥

पदच्छेदः

किम् संस्कारशतेन विट् जगति भोः काश्मीरजं जायते किम् देहः शुचितां ब्रजेत् अनुदिनं प्रक्षालनात् अम्भसा संस्कारः नखदन्तवक्त्रवपुषां साधो त्वया युज्यते न अकामी किल मण्डन प्रियः इति त्वं सार्थकं माकृथाः ॥ २४॥

संस्कृतटीका

[किम्] वितर्के [संस्कारशतेन] शृङ्गारस्य शतकेन, जल धवनादि क्रियया [विट्]

पुरीषं [काश्मीरजं] कुंकुमं [जायते] उत्पद्यते [देहः] शरीरं [शुचितां] पवित्रतां [केन] प्राप्नुयात्, गच्छेत् [अनुदिनं] प्रतिदिनं [प्रक्षालनात्] धावनात्, स्नानात् [अम्भसा] जलेन [संस्कारः] शृङ्गारः [नख दन्त वक्त्र वपुषां] करज रदन मुख शरीराणां [साधो] यत्न [त्वया] भवता [युज्यते] क्रियते [नाकामी] न अकामी, कामीतिभावः; विषयासक्तः [किन्तु] निश्चयेन [मण्डनप्रियः] मण्डनंभूषणं प्रियं यस्यसः शृङ्गाराभिलाषी [इति] एवं [सार्थकं] अर्थयुक्तं [मास्कथाः] माकुरु आत्मानमिति शेषः ॥ २४ ॥

अन्वयः

भो साधो किं संस्कार शतेन जगति विद काश्मीरजं जायते किन्देहोऽनुदिनं अम्भसा प्रक्षालनात् शुचितां व्रजेत नख दन्त वक्त्र वपुषां संस्कारः त्वया युज्यते त्वंमण्डन प्रियः अकामीन किन्तु इति सार्थकं मास्कथाः ॥ २४ ॥

भाषाटीका

भो मुनि क्या सौ संस्कार से भी जगत में वि-
ष्टा केसर होजाता है क्या शरीर प्रति दिन
के स्नान से शुद्ध होजाता है। नख दांत मु
ख शरीर का श्रृंगार जो तू करता है तो तू मंडन
प्रिय है अकामी नहीं है यह सार्थक नाम
मत रक्खो ॥ २४

भाषा छन्द

क्या जग में विट संस्कृति सौ कर चन्दन
केसर वा बन जावे। त्यों यह देह न न्हा
न किये प्रति वासर के शुचिता टुक पा
वे। संस्कृति दन्तन की नख की मुख
की वपु की यह बात जनावे। है न अ-
कामि तु मण्डन प्रीतम ना यह सार्थक
नाम धरावे ॥ २४ ॥

मूलम्

वृत्तैर्विंशतिभिश्चतुर्भिरधिकैः
सल्लक्षणैर्नान्वितै। र्ग्रंथसज्ज
नचित्त बल्लभमिमं श्रीमल्लिष
णोदितं। श्रुत्वात्मेन्द्रियकुञ्ज
रान् समटतो रुन्धन्तु ते दुर्जरान्

न्विक्षांसि विषयाटवीषु सततं संसा
रविच्छित्तये ॥ २५॥

पदच्छेदः

वृत्तैः विंशतिभिः चतुर्भिः अधिकैः सल्लक्षणे
न अन्वितैः ग्रन्थं सज्जनचित्त वल्लभं इमं श्री
मल्लिषेण उदितं श्रुत्वा आत्मेन्द्रिय कुञ्जरान
समदतैः रुन्धन्तु ते दुर्जरान् विद्वांसः विषय
टवीषु सततं संसार विच्छित्तये ॥ २५ ॥

संस्कृतटीका

[वृत्तैः] छन्दोभिः [विंशतिभिश्चतुर्भिरधिकैः
चतुर्विंशतिभिः [सल्लक्षणेन] श्रेष्ठ कथने
न कर्त्तव्या कर्त्तव्य व्यवहारेण [अन्वितैः]
युक्तैः [ग्रन्थं] शासनं [सज्जन चित्तवल्लभं
सज्जनानां सत्पुरुषाणां चित्तस्य मनसो वल्ल
भं प्रियं वा सज्जन चित्तवल्लभ नाम ग्रन्थं
[इमं] पूर्वोक्तं ग्रन्थं [श्रीमल्लिषेणेन] शब्द
रूप लक्ष्म्याः नायेन मल्लिषेणाभिधेय आ
चार्येण [उदितं] प्रकाशितं [श्रुत्वा
निशम्य [आत्मेन्द्रियकुञ्जरान] स्वस्य

करण हस्तिनः [समटतः] विचरतः [रुन्ध-न्तु] वशीकुर्वन्तु [दुर्जरान्] दुःखेन कष्टेन ज-रा जीर्णता येषां तान्, कष्टसाध्यान् [विद्वां सः] पण्डिताः [विषयाटवीषु] स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दाः विषयाः ते एव अटव्यः वनानि तेषु [सततं] निरन्तरं [संसारविच्छि त्तये] जगतो नाशाय ॥ २५ ॥

अन्वयः

ये इति शेषः विद्वांसः ते इमं ग्रन्थं श्रु त्वा आत्मेन्द्रिय कुञ्जरान् रुंधन्तु कथ म्भूतं ग्रन्थं श्रीमल्लिषेणोदितं कैः चतु भिरधिकै विंशति भिर्वृत्तैः कथम्भूतैः स-ल्लक्षणान्वितैः कथम्भूतं ग्रन्थं सज्जन चि त्त वल्लभं कथम्भूतान् आत्मेन्द्रिय कुञ्ज-रान् विषयाटवीषु सततं समटतः पुन र्दु-र्जरान् ॥ २५ ॥

भाषा टीका

विद्वान् पुरुष चौबीस श्लोक में श्रीमल्लि षेणाचार्य्य के बनाए हुवे इस श्रेष्ट ल-क्षण युक्त ग्रन्थ को सुनकर अपनी इ-

न्द्रिय रूप हाथियों को जो विषय रूप अट वी में चारों ओड़ फिरते हैं और दुर्जय है से सार के नाश के हेत रोको ॥ २४ ॥

भाषा छन्द

बीसरु चार श्लोकन में यह उत्तम लक्षण युक्त नवीना । सज्जन चित्त प्रियः चर काव्य रच्यो मल्लिषेण बड़ा जिन कीना । आतम इन्द्रिय दुर्जय कुंजर जे विषयाटवि में नित लीना । या सुनके वशि आन तिन्हें जग विख्यात हेत सुधी गुण पीना ॥२४॥

टीकाकार कवि कुल देश वर्णनं

छन्द छप्पय

भारत वर्ष मझार देश पञ्जाव सुविख्यात । ता मध दिल्ली जिला सकल जनको आनंद देन । ताके उत्तर मध्य नगर सुनपत सब सज्जन ।

ना मध चार जिनेश भवन भवि जन मन रञ्जन । तिस नगर माँहि मम बास है । मिहरचन्द मम नामवर । हूँ पण्डित मथुरादास - का । लघु भ्राता लघु ज्ञान धर ॥ ॥

चौपाई

तीन अल्प बुद्धि अनुसार॥
संस्कृत भाषाछन्द मंझार॥
बाल बोधनी टीका सार ॥
स्त्री न पण्डित जन हितकार
न्यून शतक दो सहस्रमंझार
क्षेपो अधिकसमदशचार
शुक्ल त्रियोदशिकार्तिक मास
चन्द्रबार दिन कियो प्रकाश

दोहा

है पण्डितजन प्रति यही एक प्रार्थना मूल ॥
देख दोषशुधकीजिये, अवगुण गहैं न भूल॥



इति